आम-नीम-बरगद

रमेश बक्षी

हिन्दी ADDA

आम-नीम-बरगद

https://www.hindiadda.com/aam-neem-baragad/

जेब में ठुँसे तीन-चार कागजों के बीच कुछ पते लिखे थे। सोचा ट्रेन से वापिस जाऊँगा इसलिए स्टेशन पर टहलता रहा। चार पूरियाँ और आलू की सब्जी खाई फिर हिसाब लगाया कि जुलाई में यहाँ स्कूल ज्वाइन करना है तब तक का खर्च कैसे चलेगा। लौटने और वापिस जयपुर लौटकर कुछ दिन चला लेने जितने रुपये मेरे पास थे - क्योंकि खाना महीनावार खाता था, चाय की उधारी थी, पान भी उधार चलता था लेकिन मकान का तीन-चार महीने का किराया जो मुश्किल से दो सौ के करीब बनता था, उसकी जुगाड़ बन नहीं रही थी। गरमी की छुट्टियों के कारण ट्यूशन भी नहीं। कई बार अपने आपको लानत भेजता हूँ कि इतना अच्छा पढ़ाना भी किस काम का कि सब पास हो जायें, अगर उन्हें कम्पार्टमेंट भी मिलता तो ट्यूशन चलती रहती। ...सामने आम वाले ने पाँच रुपये किलो कहा तो हँसी आ गई... क्या जमाना देखा है मैंने। कितना बड़ा बाग... जेब में ठुँसे कागजों को टटोला तो एक पते पर नजर ठहर गई। पता यमुना किनारे किसी नई कॉलोनी का था। सामान के नाम पर एक बैग था सो प्लेटफार्म से बाहर आ गया। एक कदम रुका भी कि मेरे बाबा कितने बड़े थे और हमारे आउट-हाउस में रहने वाले अंकल कितने छोटे से क्लर्क। उनकी बीवी हमारे बगीचे की देख-भाल करती लेकिन उनकी बिटिया शीला जब भाग गई तो अंकल-आंटी धीरे-धीरे मरने लगे और एक दिन तमाम आउट-हाउस खाली हो गया। उसी शीला ढोल-किया का पता मेरी जेब में था। सुना उसके पति लखपति हैं, तो क्या उसी से सौ-दो सौ माँग लूँ।

मुझे अपने बाबा याद आते रहे, वे कभी नौकरी भी करते तो किसी भी दिन छोड़ आते-संभाल तेरी घोड़ी बदे ने नौकरी छोड़ी। मैं छोटा था तो मेरे उँगली पकड़ बगीचे में घुमबाते। खुद ही बुदबुदाते-बरगद कभी जमीन भी छूता है तातो अपनी जटा से और उसकी जटा जमीन की धूल को सिर पर नहीं लगाती उसमें जड़ जमाती है।

मैं पैदल चल रहा था। आम के बीस पेड़ थे। आम आते तो आम की ऊँची डाली पर बंधे कनस्तर को बजाकर हम तोते उड़ाते। पीपल, नीम, बकायदा सभी पेड़ों में ऐसी हवा चलती की पंखे फालतू लगते।...

मुझे मकान ढूँढने में देर नहीं लगी। पीतल के अक्षरों में लिखा था ढोलकिया एंड कंपनी। गेट पर दरबान था, और लिखा था। 'कुत्तों से सावधान'। मैंने जब दरबान से पूछा तो वह ऊँघते हुए बोला - वे बाहर गये हैं।

मैंने फिर हिम्मत की-शीला बाई जी तो होंगी। ...उसने मेरा मुआयना करके पूछा-बिजली वाले हो या फोन वाले। मैं अपना बैग ठीक कंधे पर रख कर कहा-भाई, मैं जयपुर से आया हूँ। मैं सक्सेना साहब का लड़का हूँ। वे मेरी बड़ी दीदी जैसे है। ...

- सो तो ठीक होगा। काम क्या है?

- भाई मुझे उनसे मिलना है।

- शायद वे सो रही हों...

- तो भैया, (इच्छा हुई कि बोलूँ मेरे बाप) मैं लौट जाऊँगा।

आखिर वह उठा और अंदर के दरवाजे पर बेल बजाई। दो मिनट बाद एक रसोइयानुमा भइया बाहर आया। उनकी बातचीत मुझे नहीं सुनाई दी।

चौकीदार फिर आकर जब स्टूल पर बैठ गया। कान खुजलाता बोला-क्या कोई नौकारी-वोकरी का चक्कर है?

मैं चौंका कि इसको मालूम कैसे हुआ कि मैं इंटरव्यू के सिलसिले में दिल्ली आया हूँ।... वही बोला-सब सिफारिशी टट्टू चले आते है...

-नहीं भाई, मैं किसी सिफारिश के लिए नहीं आया हूँ। मैं खुद एक जमाने में बड़े बाप का बेटा था। और जिस नौकरी के लिए आया हूँ, वह मिल चुकी है।

वह फिर ऊँघने के मूड में आ गया और मेरे मन में जुगाली चलने लगी। हमारे घर कोई दरबान नहीं था, गेट नहीं था। थे तो अमलतास, गुलमोहर, आम, कटहल, नीम, बरगद, पीपल... ऐसे ऊँचे-ऊँचे तुलनार पेड़...

सहसा दरवाजा खुला और मैंने देखा कि खुद शीला दीदी सामने खड़ी है। दरबान एकदम उठ खड़ा हुआ। मैंने आगे बढ़ आदर से नमस्कार किया। वे मुस्कराकर बोलीं-अरे बन्नू तुम। बहादुर तुमने इन्हें अंदर क्यों नहीं भेजा।... दरबान तो सिर झुकाकर रह गया लेकिन मैं आगे बढ़कर भी रुक गया।

- क्यों क्या हुआ?

- वो... कुत्ते।

उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा कुत्ते नहीं है, यह तख्ती वैसे ही लगी है।

अंदर गयातो खूब बड़े हालनुमा ड्राइंगरूम में उन्होंने मुझे बैठाया।

मैं सकपकाते बोला-दिल्ली आया था सो सोचा आपसे मिल लूँ, बरसों हो गये। अकंल-आंटी की डेथ के बाद आप आई ही नहीं।... उनके चेहरे पर एक औपचारिक उदासी छाई और गई।

मैं ही बोला - और आप कैसी हैं?

- देख नहीं रहा कि मैं मुटा गई हूँ। यहाँ कोई काम ही नहीं है। बस एक फ्लोरा क्लब है उसी की प्रेसिडेंट हूँ। साथ ही इकेबाना स्कूल में लड़कियों को डेकोरेशन सिखाती हूँ। मेरी नजर पूरे कमरे में गई। जगह-जगह फूलपत्तियों को तरह-तरह के कलात्मक आकार में सजा रखा था। मुझे अपने बाग के अमलतास, गुलमोहर याद आये। वह पीला और लाल रंग अगर इस सजावट को देखे और उसकी जबान हो तो कहेगा-पिद्दे कहीं के...।

कूलर की ठंडी हवा, नरम गद्दे, कमरे में फैली सुगंध... मैं कुछ महसूस करूँ, कि वे खुद बोली-तेरे जीजाजी तो जर्मनी गये हैं, हम एक नई बहुत बड़ी टूल-फैक्टरी डाल रहे हैं।...

- यह तो बड़ी खुशी की बात है बोलते हुए सोचने लगा बचपन में मैं भी एक फैक्टरी खोलने वाला था - टेकस की, जूतों में लगाई जाने वाली कीलों की।...मन ही मन हँसा वे एक अखबार पलटते बोलीं-कभी-कभी जयपुर याद आता है। तुम्हारा कितना बड़ा बाग था। कितने ऊँचे-ऊँचे पेड़। एक बार कितने कटहल लगे थे कि सारे मुहल्ले में बाँटने पर भी खत्म नहीं हुए थे। याद है काले अंगूरों की बेल, कितने-बड़े मंडौवे पर छाई थी। पीपल और बरगद की पूजा करने मुहल्ले की कितनी औरतों आती थीं। मेरी आँखों के सामने आ गये-आम के पेड़ और उन पर बैठे तोते, नीम के पेड़ और टपकती निम्बोलियाँ, बरगद का पेड़ और जटाएँ जिन्हें पकड़कर मैं झूलता...

- कहाँ रुका है बन्नू?

- एक ... एक होटल में।

मैं हकला गया क्योंकि केवल प्लेटफार्म पर टहलते ही मैंने दिल्ली-यात्रा खत्म कर ली थी।

- अरे बन्नू जब पता तेरे पास थातो यहीं ठहर जाता। खैर, खाना खाकर जाना।

- आ बन्नू मैं तुझे अपना बाग दिखाऊँ।

- लेकिन दीदी आपके बंगले में दरवाजे-खिड़की-परदे सभी हैं, बागे तो कहीं नहीं। वे मुस्करा दीं। -आ ना मैं यह सब जापान से सीखकर आई हूँ।

उन्होंने शीशे का एक दरवाजा खोला। वह एक बड़ा ताल था। कार्निस, लटकते गमले-गोल-चौकौर-अठपहलू। वहाँ खूब ठंडक थी। एक पिंजरे में दस-बारह लाल मुनिया चहक रही थी।

- देखो। - उनके चेहरे पर भंयकर अभिमान था। पारा पड़ी स्केल में आठ-दस पौधों को नापकर उन्होंने बताया - किसी की ऊँचाई एक फुट से ज्यादा नहीं थी।

मैं चकित देखता रहा गया। - यह हैं आम, यह जापुन, अमलतास, गुलमोहर, पीपल, बरगद, नीम...।

वे समझा रही थी - ये सब मिनिएचर है। इन्हें इस ढंग से पाला गया है कि ये इससे ज्यादा नहीं बढ़ पायें। इन पर मेहनत करनी पड़ी है, बेहद मेहनत। जड़ों को कैद करना पड़ता है, पुनः तराशनी पड़ती हैं, पत्ते छाँटने पड़ते हें तब जाकर ये पौधे यह रूप पा सके हैं।...

बातें करते नन्हें बरगद को उन्होंने चूम लिया।

मैं भौंचक देखता रहा गया। यह सब मेरी कल्पना से बाहर था कि बचपन से जिन पेड़ों की छाँह में मैं पला-बढ़ा हूँ वे इतने छोटे और सिकुड़े हुए हों।

- यह देख, यह है तोड़। कितना छोटा, कितना प्यारा।

उन्होंने मेरी तरफ देखा तो मैं वैसे ही बोल दिया - हाँ-हाँ... बहुत प्यारा है।

वे एक-एक पौधा दिखाती रहीं-यह अमरूद... अनार... खजूर...

मैं खजूर को देखता रहा। लगा बचपन में पढ़े सारे दोहे गलत हो गये।...

सहमा नौकर ने आकर कहा -

- बीबीजी, खाना लग गया।

खाने की मेज-बारह कुर्सियों वाली। उस पर तरह-तरह के फूलदान। उन्होंने मेरे हाथ में प्लेट दे दी। पाँच तरह की सब्जियाँ, रायता, दाल, पूरियाँ। मैं अपनी प्लेट में खाना लेते सकुचा रहा था। - अरे अचार खायेगा क्या? उनके यह कहते ही नौकर चार-पाँच तरह के अचार रख गया।

खाने का पहला कौर ही गले में अटकने लगा-कितने दिनों से मैं केवल दाल-रोटी खा रहा हूँ, अधिक से अधिक प्याज मिल जाता है, कितना संक्षिप्त खाना होता है वह। और यह...

- पुलाव नहीं लेगा?

- नहीं दीदी, मैं दक गया खाते-खाते। इतनी बड़ी मेज, इतना सारा खाना...।

वे इसे प्रशंसा समझकर तन्मय हो गई और अपने नौकर को आइसक्रीम लाने के लिए कहा।

- अरे मैं पूछना ही भूल गई। घर कैसा है, बाबा कैसे है?

मेरा चेहरा उतर गया। धीमे से बाला-बाला बीमार रहे। उन्हीं दिनों मकान बाग सब स्कीम में आ गये।

- स्कीम?

- हाँ। वहाँ लंबी-चौड़ी सड़क बन गई। आस-पास दुकानें खुल गई। हमारे मकान और बारा के कारण शहर की रौनक में कमी आ रही थी।

- अरे, मुझे पता ही नहीं।

मैं उठ खड़ा हुआ और ग्लास भर पानी पी लिया।

- फिर क्या हुआ?

- क्या होना था। जो मुआवजा मिला वह बाबा के मरने तक काम आता रहा।... मैं चुप हो गया तो हमदर्दी जताते-जताते वे पिघलाई।

- तो अकेला रह रहा है। दिल्ली कैसे आया? ड्राइंगरूम से ओ उन्होंने पूछा।

- एक स्कूल में मास्टरी के इन्टरव्यू के लिए आया था। चार सौ तनख्वाह है, प्रायवेट स्कूल है लेकिन चला लूँगा।

मुझे अच्छा लगा कि मेरे बोलने में दया-माया-करुणा कुछ नहीं थी।

- चच्च। इतनी छोटी नौकरी, इतनी छोटी तनख्वाह।...

वे उसाँस लेकर चुप हो गईं।

मैंने अपना बैग उठा लिया और दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा। वे चुपचाप गेट तक मुझे छोड़ने आईं। मैंने विदा का नमस्कार किया और गेट की तरफ मुड़ा तो उन्होंने पुकारा, अरे बन्नू। मैंने घूमकर देखा। बोला कुछ नहीं।

वे ही बोलीं-मेरी मदद की कोई जरूरत हो तो...

मैं एक कदम आगे बढ़ गया। बहुत देर से थूक गले में अटका था, गेट से बाहर आते ही उसे थूक दिया।